Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 16-07-2026, Accepted: 16-08-2026, Published: 31-08-2026
Volume 7, Issue 3, 2026, Page No. 11-14

मुक्तिबोध की कविताओं में गांधी के बिम्ब

डॉ. श्याम शंकर सिंह
प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय रोनो हिल्स, दोईमुख, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/shodh.2026.7.3.7008

सारांश
भारतीय राजनीति में गांधीजी के आगमन के साथ एक नए युग की शुरुआत होती है। गांधी जी ने अपने जीवन को प्रतिमान बनाकर मूल्य युक्त जीवन जीने का संदेश दिया। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को जन आंदोलन का स्वरूप तो दिया ही, सत्याग्रह पर सर्वाधिक जोर दिया और इसे उन्होंने राजनीतिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अनिवार्य साधन भी माना। उन्होंने जो मूल्य सृजन किये और जो अपने जीवन के माध्यम से संदेश दिया, उसका प्रभाव भारतीय भाषाओं के साहित्य पर अनिवार्य रूप से पड़ा। उन्हीं के व्यक्तित्व को केंद्रित करके उसे युग के भारतीय साहित्य को 'सत्याग्रहयुगीन भारतीय साहित्य' के रूप में पहचाना जाता है। भारतीय साहित्य में गांधीवादी मूल्यों का प्रभाव स्वाधीनता संग्राम के दौरान बहुत ही प्रभावशाली रूप में दिखाई दिया, स्वाधीनता के बाद भी गांधी जी की आभा ने भारतीय साहित्यकारों को प्रभावित किया– विशेष कर नेहरू युग के दौरान! हिंदी में मुक्तिबोध भी उसी दौर में साहित्य सृजन कर रहे थे। वे मूलतरू मार्क्सवाद के सिद्धांतों से प्रभावित थे, लेकिन उन्होंने अपने समय में गांधी जी के प्रभाव को देखा और महसूस किया था। वह उनके राजनीतिक कार्यों से, सामाजिक कार्यों से बहुत प्रभावित थे। यह प्रभाव उन पर आखिरी समय तक बना रहा। उनकी अंतिम लंबी महाकाव्यात्मक नाटकीय संरचना वाली कविता 'अंधेरे में' भी गांधी जी का बिंब भावपूर्ण शब्दों में रचित है। 'भारतीय इतिहास और संस्कृति' पुस्तक में भी गांधी जी के अवदान को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। उनके पूरे रचना काल में गांधी जी का उल्लेख किसी न किसी प्रसंग में आता रहा। मुक्तिबोध के साहित्य में उल्लिखित प्रसंगों के आधार पर प्रस्तुत आलेख की रचना की गई है। इससे तत्कालीन भारतीय राजनीति के कुछ विशेष रूप व्यंजित होते हैं। इस दृष्टि से कविताओं से एक राजनीतिक इतिहास की छवि बनती हुई दिखती है। यह आज भी प्रासंगिक है।

मूल शब्दः सत्याग्रह, समग्रता, बौद्धिक–बुद्धिजीवी, आत्मसंघर्ष, सामंजस्य

हिंदी साहित्य पर गांधीवादी मूल्यों के प्रभाव की बात अत्यंत सुपरिचित तथ्यों में से है। प्रेमचंद, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, सुमित्रानंदन पंत, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिवंश राय बच्चन, भगवतीचरण वर्मा, जैनेंद्र आदि साहित्यकारों पर गांधी–दृष्टि का प्रभाव दिखाई पड़ता हैप साहित्यकारों पर पड़े गांधीवादी दर्शन के आधार पर ही विजयदेवनारायण साही जैसे समीक्षकों ने छायावादयुगीन साहित्य को सत्याग्रह युग का साहित्य कहा हैI स्वाधीनता प्राप्ति के थोड़े ही समय के बाद किस तरह से गांधीवादी मूल्यों की हत्या होने लगी थी इसे रेणु ने मैला आँचल में बावनदास की हत्या के प्रसंग से दर्शाया है। लेकिन गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में जिस तरह से तत्कालीन भारतीय राजनीति में गांधीवादी मूल्यों का पतन दर्शाया है, वह बेजोड़ है। इस दृष्टि से मुक्तिबोध की गांधी विषयक दृष्टि विवेचनीय है। मुक्तिबोध की गांधी दृष्टि को उनके साहित्य में प्राप्त गांधी विषयक प्रसंगो के आधार पर विवेचित किया जा सकता है। यहाँ यह पहले ही उल्लिखित कर देना उचित रहेगा कि मुक्तिबोध के साहित्य में गांधी के बिम्ब संभवतरू 1956 से आने प्रारम्भ होते हैं। उनकी चार कविताओं में गांधी के बिम्ब बड़ी स्पष्टता के साथ उभरकर आए हैं। ये हैं: 1. चाँद का मुँह टेढ़ा है [1] (1957) 2. इस नगरी में (1957), 3. ब्रह्मराक्षस [2] (1957) और 4. अँधेरे में [3] (1963) ये कविताएँ क्रम से मुक्तिबोध रचनावली में संकलित हैं। केवल प्रथम और द्वितीय के मध्य एक कविता विद्यमान है।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में गांधी जी का उल्लेख है। इसे समग्रता में समझना आवश्यक है। इस कविता में एक ओर कारखाना है, उसकी कलमुँह चिमनियाँ हैं तो दूसरी ओर चाँद का टेढ़ा मुख है। चाँद के टेढ़े मुख को देखकर 'मैं' के मन में खटका होता है कि किसी घर से कोई चीख न सुनाई दे जाए या कहीं कोई बहुत बुरे हाल में न पहुँच जाए! कर्फ्यू, छिरू छिरू, थूरू और कारतूस छर्रे विद्यमान हैं। गंजे सिर चाँद की संवलाई किरणों के जासूस साम–सूम शनैः शनैः टहल रहे हैं। ये कोनों के तिकोनों में छिपे हुए हैं। चाँद की कनखियों की किरणों ने नगर छान मारा है। अँधेरे को आड़े–तिरछे काटकर पीली–पीली पट्टियां बिछा दी हैं। समय काला–काला हो उठा है। चाँद की आँखें कंजी हैं। आस–पास भुसभुसे उजाले का षड्यन्त्र दिखाई पड़ता है। जमाना सख्त प्रतीत हो रहा है। हड़ताली पोस्टर चिपकाए जा रहे हैं। कविता में एक बरगद का भी उल्लेख है। यह बरगद इतिहास का साक्षी है। इतिहास में गांधीजी भी हैं। फिलहाल यहाँ उनकी मूर्ति विद्यमान है। गांधी जी की मूर्ति को सड़कों पर, चौराहों पर इसलिए लगाया जाता है कि लोग उनके विचारों और कार्यों को स्मृति में रखकर उनके प्रति श्रद्धा भाव रख सकें। वे राष्ट्र का रूप उभारते हैं। उनकी सजीव परंपरा से यही अभिप्राय है। लेकिन आज स्थिति यह है कि उनकी मूर्ति पर बड़ा सा उल्लू आकर बैठ गया है। उल्लू जोरदार बहस और संवाद के मध्य जिस प्रकार की बातें करता है उससे उसकी करतूतें प्रकाशित होती हैं। वह बताता है कि उसने 'मशान में सिद्धि प्राप्त की हुई है। इसका साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए वह मनुष्यों पर मूँठ मार कर अर्थात् लाल रंग की तोरी पर विनाश का मन्त्र पढ़कर फेंक देता है। ये भयानक लाल मूँठ काले आकाश में लाल दीये की तरह तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। ये काली–काली हवाओं में शनैः शनैः तैरते हुए जाने लगते हैं। इस क्रिया का प्रभाव पड़कर ही रहता है। देखने वाले को कहना ही पड़ता है कि वाह, आप तो सचमुच संसार को शरण देने वाले बादशाह हैं। आप अँधेरे में संसार को शरण देने की सामर्थ्य रखते हैं। दिन के उजाले में भी अँधेरे की जो साख बनी हुई है उसका यही कारण है। यही कारण है कि संस्कृति के मुख पर हड्डियों की राख पड़ी हुई है। जमाने के चेहरे पर गरीबों की छातियों की राख पड़ी हुई है। आकाश अँधेरी सच्चाइयों को घोंटकर पी गया है। मनुष्यों को मारने की दृष्टि से ये टोटके खूब कहे जायेंगे।

उल्लू का बिम्ब स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखता है। यह लक्ष्मी का वाहन है। यह गरुड़ की तरह उड़ने वाला पक्षी है। यह अँधेरे में अधिकाधिक देख सकता है। इसी समय वह शिकार कर सकने में अधिक समर्थ दिखाई पड़ता है। कवि ने उसकी आँखों के लिए 'चक्र' शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् वे पहिए की तरह गोल और बड़े–बड़े हैं। वे स्थिति और गति के लक्षणों से युक्त हैं। उसके कान संवेदनशील होते हैं। भारत में उल्लू 'अज्ञान' का प्रतीक है तो जापान में 'विद्वान' का। वस्तुतरू यह भेद बाहरी–भीतरी के बीच का है। वह बाहर से अज्ञानी प्रतीत होता है, लेकिन भीतर से वह बहुत कुछ जानता है। इस प्रकार के लक्षणों वाले व्यक्ति स्वयं को गांधीजी की परंपरा से जुड़े हुए होने का दावा करते थे। मुक्तिबोध ने 'भारत: इतिहास और संस्कृति' में गांधीजी से संबंधित जो बातें लिखी हैं उससे इस दृश्य की संगति नहीं बैठती। इससे विडंबना ही प्रत्यक्ष होती है। गांधी जी ने 'अपने को जनता का बना लिया' था। वे जनता के 'अपने हो गये थे।' जिस तरह भारत का 'दरिद्र–नारायण' रहता है, उसी प्रकार उन्होंने अपने को ढाल लिया था। 'पराई पीर के पीछे, उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया' था। उन्होंने 'जनता के साथ अपने को एकाकार कर लिया' था। 'जनता का उत्थान उनका प्रथम लक्ष्य हो गया' था। कहने का अभिप्राय है कि गांधीजी ने जिस प्रकार की राजनीति का नेतृत्व किया था, उसका विकास हुआ होता तो बिम्ब कुछ और ही होते। निश्चय ही इस क्रम में बहुत–कुछ छूटता भी। ज्योंदृका–त्यों नहीं बढ़ता।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है', में चाँदनी 'सेक्स के कष्टों के कवियों के काम–सी' के रूप में उल्लिखित है। वह विभिन्न पोजों में लेटी हुई है। हृदयविनाशिनी सट्टे का भी उल्लेख है। कविता में एक बार फिर से गांधी जी की मूर्ति पर बैठे हुए उल्लू का उल्लेख है। इस बार उल्लू अपना करतब दिखाता है। अँधेरे में किसी को पोस्टर चिपकाते देखकर वह अचानक 'गला फाड़ कर' गाना शुरू कर देता है। इसका प्रभाव तत्क्षण दिखने लगता है। दुनिया की साँसे हिचकी की ताल पर मरना शुरू कर देती हैं। अर्थात् गांधी जी की परंपरा में शामिल होने का दावा करने वाले लोगों के मुख से विनाश के स्वर फूट रहे हैं। स्पष्ट है कि गांधीजी की परंपरा से जुड़े रहने का दावा करने वाले लोग अन्य परंपरा का अनुसरण कर रहे हैं। गांधीजी की परंपरा से उन्हें उतना ही मतलब रहा जितने में स्वार्थ सधे। जनता का हित सधा या नहीं– इससे इन्हें मतलब कम–से–कम रहा। निश्चय ही ये बातें कुछ के ही विषय में कही जा सकती हैं।

'ब्रह्मराक्षस' कविता में भी गांधी जी का उल्लेख है। इसमें एक मृतकात्मा बौद्धिक–बुद्धिजीवी का वर्णन है। यह निर्दिष्ट कार्यों को न कर पाने के कारण मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाता। मरने के बाद वह ब्रह्मराक्षस बनकर पाप से मुक्त होने के लिए स्नान करके अपनी मलिनता दूर करने का प्रयत्न कर रहा है। अब वह गांधी की पुनर्व्याख्या में लगा हुआ है। वह आत्मसंघर्षरत है। उसका संघर्ष 'अच्छे व उससे अधिक अच्छे के बीच के संगर' को लेकर है। उसका यह प्रयत्न सराहनीय है। इसलिए वह मरने के बाद भी काम का है। वह 'भाव–संगत तर्क संगत कार्य सामंजस्य योजित समीकरणों के गणित की सीढ़ियाँ' छोड़कर गया था। वह गुरूओं के पास भी गया था। लेकिन समय बदल चुका था। अब कीर्ति का व्यवसाय करने वाले लोग आ गए थे। अब ध्यान लाभकारी कार्य में से धन प्राप्ति पर केन्द्रित हो गया। हृदय–मन धन से आप्लावित दिखा। धन–अभिभूत अन्तरूकरण से सत्य की झांक निरन्तर चिलमिलाती दिखती थी। ब्रह्मराक्षस आत्मचेतस् था। उसके व्यक्तित्व में अनबन थी– द्वंद्व था। किन्तु वह बनावटीपन से बहुत दूर एक विश्वचेतस् व्यक्ति थे। उसका विषायाकुल मन महत्ता के चरण में था, लेकिन वह भीतरी और बाहरी दो पाटों के बीच पिसकर रह गया। अब वह पागल प्रतीकों के माध्यम में अपनी बातें कहता चला जा रहा है। वह कमरे में गणित करता रहा। एक दिन उस अनजानी ज्योति ने सदा–सदा के लिए आँखें मूंद लीं। कविता का 'मैं' उसका ऐसा शिष्य बनना चाहता है जिसके हृदय में करुणा भरी हुई हो। वह उसके अधूरे कार्य को उसकी वेदना के स्रोत को संगत पूर्ण निष्कर्षों तक पहुँचाना चाहता है।

स्पष्ट है कि गांधीजी अपनी आंतरिक असंगतियों पर विजय प्राप्त कर चुके थे। उनके जीवन का कर्म से सामंजस्य था। उन्होंने जनता से जुड़कर भली–भाँति कर्तव्य का निर्वहण किया। लेकिन नेहरू युग के बहुत से बौद्धिक–बुद्धिजीवी ऐसा नहीं कर पा रहे थे। उनके भीतर असंगतियाँ विद्यमान थीं– विचार और कर्म में संगति न थी। उनके हृदय में जनता के लिए कितनी जगह थी, यह भी स्पष्ट नहीं था।

'इस नगरी में' कविता में ब्रह्मराक्षस की छायाओं को गांधी जी की चप्पल पहने हुए दिखाया गया है। 'डूबता चाँद कब डूबेगा' कविता में मानव मस्तक में निकले हुए कुछ ब्रह्मराक्षसों को 'गांधीजी की टूटी चप्पल' पहने हुए दिखाया गया है। अर्थात् बौद्धिक बुद्धिजीवी अपने हितों को साधने के लिए गांधीजी की परंपरा से जुड़े रहने का दावा करने में लगे हुए हैं। गांधीजी की परंपरा का बदले हुए समय में किस प्रकार से विकास किया जाए– इसमें उनकी दिलचस्पी बहुत ही कम रही। हित न सधने पर पहनी हुई टूटी चप्पल उतारी भी जा सकती थी। उतारने–पहनने का क्रम लगा रह सकता है। पैरों को बचाने के लिए चप्पल पहनी जाती है। इससे जीवन हेतु आवश्यक गतिशीलता बनी रहती है, ठण्ड नहीं लगती, तप्त से बचा जा सकता है, कंकड़ से बचा जा सकता है, पैरों में हल्के काँटे नहीं चुभते– पता नहीं कितनी दूर तक व्यंजना जाती है। मुख्य व्यंग्यार्थ है– उसे जीवनोपाय हेतु अपनाना।

'अँधेरे में' कविता में गांधी जी के बारे में विस्तृत वर्णन है। उसमें कवि का 'मैं' अपनी 'पूर्णतम परम अभिव्यक्ति' का 'शोध कर रहा है', उसकी 'खोज' करने में लगा हुआ है। इस कार्य के दौरान उसे गांधीजी की मूर्ति दिखाई पड़ती है। कवि ने उनकी मूर्ति को सजीव रूप में प्रस्तुत किया है। 'दरिद्र–नारायण' गांधी जी मानो कड़ाके की ठण्ड से बचने के लिए स्वयं को पूरी तरह से बोरे में ओढ़े हुए है; उनके हाथ–पाँव सिकुड़े हुए हैं; वे कांप रहे है, थर–थर कर रहे हैं। लगता है कि वे बचेंगे नहीं। अचानक वे बोरे में से अपना सिर बाहर करते हैं। उनके बाल बिखरे हुए हैं। कान चीखने को होते हैं कि उनका मुख खुलता है। वे कुछ बुदबुदाते हैं। लेकिन वह सुनाई नहीं पड़ता। 'मैं' जब ध्यान से उन्हें देखता है तो उसे प्रतीत होता है कि यह व्यक्ति परिचित लोगों में से ही है। यह व्यक्ति कई बार उसकी आँखों के सामने से गुजरा था। लेकिन वह उससे मिल नहीं सका था। 'मैं' के अपने मानस में कोई बिम्ब उभरता प्रतीत होता है, परंतु विचार दबे ही रह जाते हैं। विचार इसलिए दबे रह जाते हैं कि इसके लिए जो साहस अपेक्षित है उसका उसमें अभाव है। फिर भी उसके समक्ष चेहरा उभरकर ही रहता है। पता चलता है कि यह तो गांधीजी का मुख है। इनके हाथ–पाँव काम नहीं कर रहे। उन्हें इस रूप में देखना आश्चर्य में डालने वाला है। 'मैं' का मन नहीं मान पाता कि ऐसा भी हो सकता है। 'मैं' को लगता है कि गाँधीजी चुपचाप कुछ जांच–पड़ताल करने में लगे हुए हैं, कुछ गोपनीय से कार्य में लगे हुए हैं। वे अँधेरे की कालिमा से ढँके हुए हैं। लेकिन ऐसे परिवेश में भी वह देव की तरह लग रहे हैं– ऐसा देव जिसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। उनको देखकर 'मैं' के मन में दैन्य भाव जाग उठता है। उनके पास जाने के लिए उसके पाँव जैसे ही उठते हैं कि उसे बिजली के झटक जैसा आघात महसूस होता है। गाँधीजी का यह स्वर सुनाई पड़ता है– दूर भाग, दूर हट! हम लोग बीते हुए समय के हैं। तुम लोग अपने समय के साथ आगे बढ़ते जाओ। 'मैं' उनका मुख देखता ही रह जाता है। उनके शब्दों से गुरु या शिक्षक होने का भाव

झलक रहा था। मुख पर पड़ी सिलवटों से गंभीर दृढ़ता झलक रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे कह रहे हैं: "दुनिया को कचरे का ढेर मत समझो। स्वयं को उस कचरे पर दाना चुगने के लिए चढ़े हुए मुर्गे की तरह मत देखो। ऐसा मत समझो कि इस प्रकार से तुम ऊँचे स्वर में बोलकर मुक्तिदाता के रूप में अपनी पहचान बना लोगे। मिट्टी के लोंदे में विद्यमान किरणीले कण–कण को गुण मानो। इन्हीं गुणों से भविष्य मूर्त होगा"। इस प्रकार के गंभीर शब्द कहते हुए गांधीजी आगे बढ़ गये। 'मैं' को तत्काल में तो समझ में ही नहीं आया कि गांधीजी क्या बोल रहे हैं। लेकिन वह इन शब्दों से प्रभावित होकर बहुत ही उद्विग्न हो उठा। एकाएक 'मैं' को मूर्ति की ठठरी से शरीर के अन्दर की आत्मा उठती हुई दिखाई पड़ी। उसकी आँखों पर चश्मा था, हाथ में लाठी थी और कंधे पर बोरा था। वह बाँह में एक बच्चा लिए हुए था। 'मैं' यह अद्‌भुत दृश्य देखकर आश्चर्य से भर उठा। उसके मन में जिज्ञासा हुई कि यह शिशु यहाँ कैसे आ गया? इस पर द्युति–पुरुष ने मुस्कराते हुए कहा, "यह शिशु मेरे पास चुपचाप सोया हुआ था। अब तुम इसे संभालो, तुम इसे सुरक्षित रखो। मैं उससे कुछ कहना ही चाहता था कि वह अदृश्य हो गया। दूसरी ओर, अंधकार और भी गहराता हुआ फैलता चला जा रहा था। इसी के साथ–साथ 'मैं' को उससे एक नन्हे से आकाश का सा अनुभव हो रहा है। उसका स्पर्श सुकुमारता लिए हुए है। प्यार करते समय जैसा अनुभव होता है कुछ–कुछ वैसा ही अनुभव 'मैं' को होता है। शिशु भार का अनुभव भी कराता है–इस अनुभव में गंभीरता भी विद्यमान है। उससे भविष्य का अनुभव होता है– भले ही अंधकार से भरी हुई दूरियाँ क्यों न विद्यमान हो। 'मैं' तारो भरे आकाश के परिवेश में बिना रूके हुए बढ़ता चला जाता है– दूरियों की खोहों की पर्तों में घुसता चला जा रहा है। अचानक कंधे पर रखा हुआ शिशु रो पड़ता है। 'मैं' को यह स्वर अति परिचित लगता है। उसने कई बार इस स्वर को सुन रखा था। इस स्वर में स्फोटक क्षोभ का आवेग है, एक गहरी शिकायत निहित है। 'मैं' को डर है कि यह स्वर कहीं कोई सुन न ले। यदि इस स्वर को सुन लिया गया तो दोनों ही कहीं के भी नहीं रहेंगे। अब 'मैं' शिशु को पुचकारने लगता है, दुलारने लगता है; समझाने के लिए गाना सुनाता है; उसके होंठो से कोई अर्धविस्मृत लोरी फूट पड़ती है। 'मैं' उसे चुप कराने के लिए जितनी भी कोशिशें करता है, वह और भी क्रोध से लगातार चीखता चला जाता है। 'मैं' के ऊपर उसकी अश्रु बूँदे गीले–गीले अंगार की तरह टपकती हैं। लेकिन 'मैं' प्रसन्न होता है। इसका कारण है कि शिशु वह कर रहा है जो 'मैं' अपने जीवन में नहीं कर पाया। वह शिशु की पीठ थपथपाकर उत्साह बढ़ाता है। 'मैं' भीतर से आर्द्र हो उठता है। 'मैं' के पाँव आगे की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। वह किसी भीतरी सोच में डूबा हुआ है। उसके हृदय की गहराइयों में रक्त का सरोवर है। उस रक्त में द्युतिमान मणियाँ डूबी हुई हैं। इससे रक्त से लाल–लाल किरणें फूटती प्रतीत होती हैं। इस अनुभव रक्त में संकल्प डूबे हुए हैं। ये संकल्प 'मैं' के साथ–साथ चल रहे हैं। 'मैं' अंधकार से डूबी हुई गलियों में चलता चला जा रहा है। अचानक उसे पता चलता है कि कंधे पर कुछ नहीं है। शिशु न जाने कहाँ चला गया था। उसके स्थान पर सूर्यमुखी फूल के गुच्छे आ गये हैं। सुनहले रंग के इन पुष्पों से प्रकाश बिखर रहा है। पूरा तन किरणों के कण कण से आलोकित है। सामने का रास्ता भी आलोकित है। वह इस विपर्यय को देखकर वाहवाही कर उठता है। इस खूबी पर वह विस्मय से भर उठता है। इतने में एक और गली आ जाती है। एक दरवाजा खुला हुआ दिखाई पड़ता है। उसकी सीढ़ियों पर अँधेरा छाया हुआ है। घर के अंदर कोई ढिबरी टिमटिमा रही है। वह बढ़ता चला गया। सहसा उसे पता चलता है कि फूलों के लंबे–लंबे गुच्छे न जाने कहाँ चले गये। उसे महसूस हुआ कि बोझ के कारण कन्धे दुखते चले जा रहे हैं। पता चलता है कि उन पर तो बंदूक आ गई है। वह इस विपर्यय को देखकर वाहवाही कर उठता है। इस खूबी पर वह विस्मय से भर उठता है।

अगले दृश्य में कलाकार की मृत्यु का वर्णन है। इसके उल्लेख के बिना गांधीजी वाला प्रसंग अस्पष्ट ही रह जायेगा। 'मैं' 'अन्दर और बाहर दोनों जगह' [4] 'संभावित आत्मरूप या अस्मिता' [5] को खोजता है। 'मैं' को एक कमरा खुला हुआ दिखता है। वहाँ साँवली हवाएँ बह रही है। अँधेरे में सितारे खिड़की से झाँकते हुए प्रतीत होते हैं। आसपास बर्फीली साँस का सा तितर–बितर होकर फैला पड़ा है। कमरे के बीचों–बीच कोई पसरा पड़ा दिखाई पड़ता है। उसकी बांहे फैली हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह ढहकर गिर पड़ा है। 'मैं' उसे टॉर्च की रोशनी में देखता है। खून से लथपथ बालों के बीच उसका माथा दिखता है। उसकी भौहों के बीच में गोली का सूराख है। खून की पर्त उसके गालों पर फैली हुई है। होठों पर एक कत्थई धारा दिख रही है। चश्मा फूटा हुआ है। नाक सीधी है! 'मैं' इस दृश्य से दुखी हो जाता है। कलाकार उसका परिचित था। वह एक एकांतप्रिय व्यक्ति था। वह सच्चाई को अनुभूति के स्तर तक सीमित समझता था। उसे अँधेरे की गलियों का कलाकार कहा जा सकता है। उसके हृदय में भार था। किन्तु वह कार्यक्षमता से वंचित व्यक्ति की तरह अपने असंग व्यक्तित्व के साथ जीता चला आ रहा था। उसके हृदय में सुकुमार मानवीय हृदयों के अपने शुचितर विश्व के सपने पल रहे थे; स्वप्न, ज्ञान और जीवन के अनुभव हलचल कर रहे थे। वह उन्हें किसी को दे नहीं पाया। इस तरह वह शून्य के जल में चुपचाप डूब गया। उसका उपयोग नहीं हो पाया। वह न जाने किस झोंक में आकर क्या कर बैठा था कि प्राणदण्ड पाने वालों का वध करने वालों के हाथों मारा गया। वह मुक्ति के यत्नों के साथ रहा था। उसे सभी चाहते थे। वह स्वयं में प्रकाश से भरा हुआ था। उसका मरना मानो एक युग का अंत था; एक जीवन आदर्श का अन्त था। 'मैं' को ऐसा लगा जैसे कोई उसे चिढ़ा रहा हो। अब 'मैं' के समक्ष यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि वह अब तक क्या कर रहा था! पता चला कि वह तो सभी ओर भागता फिर रहा था। लेकिन इस समय स्वयं को कोसना निरर्थक है। अब यही करना श्रेयस्कर है कि मित्रों को ढूंढ़ा जाए। नये–नये सहचरों को प्राप्त किया जाए। यह सब सत–चित–वेदना भास्वर से युक्त होना चाहिए। इस स्तर पर 'मैं' और जनता का भावात्मक स्तर पर एकीकरण हो जाता है। कर्मरत जनता बौद्धिक–बुद्धिजीवी के मध्य विद्यमान दरार पट जाती है। कर्मरत जनता बौद्धिक–बुद्धिजीवी से मार्गदर्शन प्राप्त करने लग जाता है। बौद्धिक–बुद्धिजीवी अपने जीवन में विचार और कर्म में संगति ढूंढ लेता है। कर्मरत जनता एवं बौद्धिक–बुद्धिजीवी–दोनों ही विचार और कर्म के स्तर पर संगति प्राप्त कर लेते हैं। कवि को पूर्णतम परम अभिव्यक्ति इसी स्तर पर प्राप्त हो जाती है। मुक्तिबोध कर्म पर जोर देते हैं। गांधी जी भी कर्म करने में विश्वास करते थे। गांधी जी की तरह मुक्तिबोध ने भी सत् और चित् का उल्लेख किया है। गांधीजी की करूणा और मुक्तिबोध की वेदना में कोई अन्तर नहीं है। गांधीजी की तरह मुक्तिबोध भी जनता से मैत्री और साहचर्य की बात करते हैं। मुक्तिबोध की कविता 'अन्धेरे में' में प्रयुक्त 'क्रांति' शब्द प्रगति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भारतीय जनता हर वर्ष अगस्त क्रांति को याद करती है। 'करो या मरो' जैसे मन्त्र के द्रष्टा गांधी जी ही थे। उल्लेखनीय है कि 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में अधिकांश स्थलों पर जनता ने अपना नेतृत्व आप किया था। इसका कारण यह था कि सभी नेताओं को जेल में बन्द कर दिया गया था। कुछ ही नेता– वह भी स्थानीय स्तर पर– जनता के बीच रह गए थे। कविता में आया हुआ 'बंदूक' शब्द रक्षा– भारतीय जनता की रक्षा के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है। हाँ, विडंबना के स्तर पर यह प्रयुक्त न हो– यही श्रेयस्कर है। कविता में प्रयुक्त फूल प्रकाश के स्रोत का गुण लिये हुए है।

शिशु नव स्वतंत्र देश का भविष्य है तो खिला हुआ पुष्प स्वतंत्र देश की प्रबुद्ध युवा पीढ़ी का। गांधीजी इसे लाये हैं। मुक्तिबोध 'गरमदली' के अवदान को नकारते नहीं। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और 'अँधेरे में' में गांधी के साथ तिलक का भी उल्लेख है।

निष्कर्ष

रूप में कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध की कविता में गांधीजी का उल्लेख कई बार हुआ है। उनके समय के कवियों में ऐसा कम ही देखा जाता है। यह विवेचना का विषय है कि इस दोहराव का कारण क्या है? कहा जा सकता है कि कवि के मन में गांधीजी का बिंब काल की गति को देखते हुए उभरता है। कवि का परिवेश ही इस बिम्ब को लाता है। गांधीजी ने जिस प्रकार से पराधीन भारत में अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया, जिस प्रकार से पराधीन भारतीय समाज को अपने हृदय में स्थान दिया और जिस प्रकार से पराधीन भारत की जनता के हृदय में अपना स्थान बनाया उससे कवि और उसका संभावित पाठक शिक्षा पा सकता है। कवि के काल ने जो रूप ग्रहण किया था उसे देखते हुए इसकी आवश्यकता थी। गांधीजी के पश्चात् यदि गांधीजी याद आते हैं तो मानना होगा कि उनमें बहुत कुछ ऐसा बचा हुआ है जिससे भारतीय जनता के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण किया जा सकता है। गांधीजी का साक्षात्कार यदि हमें सचेत करता है, सावधान करता है, तो वह भी कम महत्व का नहीं है। निश्चय ही इस क्रम में बहुत कुछ की गणना रूढ़ि में होगी और बहुत कुछ जीवन्त परम्परा के अन्तर्गत शामिल हो जाएगा। गांधी जी ने जीवित रहते ही सादगी, मितव्ययिता जैसे मूल्यों से परिचित कराना प्रारंभ किया था। यह देश के लिए त्रासदी ही कही जायेगी कि स्वाधीनता प्राप्ति के साढ़े पाँच महीने बाद ही गांधीजी को मृत्यु लोक को छोड़ना पड़ा। भारतीय जनता को मार्गदर्शन का सौभाग्य प्राप्त न हो सका, लेकिन 29 जनवरी, 1948 को उन्होंने 'लोक सेवक संघ'– 'एसोसियेसन ऑफ सर्वेंटस ऑफ द पीपुल' में तत्कालीन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी को घुला देने का प्रस्ताव रखा था। इससे कुछ संकेत प्राप्त हो जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. गजानन माधव मुक्तिबोधरू प्रतिनिधि कविताएँ, सं. अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पुनर्मुदित, 1993
2. वही, 111
3. वही, 119
4. कविता के नये प्रतिमान पृ. सं. 149, 150
5. वही